**झारखण्ड उच्च न्यायालय, राँची**

**प्रथम अपील संख्या 49 / 2019**

डॉ0 पंकज कुमार ......... .......... अपीलार्थी

बनाम्

प्रेरणा ......... ........... प्रत्यर्थी

कोरमः **माननीय न्यायमूर्ति श्री अपरेश कुमार सिंह**
**माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती अनुभा रावत चौधरी**

वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से

अपीलार्थी के लिए : श्री इंद्रजीत सिन्हा, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी के लिए : श्री कौशिक सरखेल, अधिवक्ता

16 / 16.12.2020 वर्तमान अपील में अतर्गस्त परिसीमा के प्रश्न पर अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री इंद्रजीत सिन्हा और प्रत्यर्थी का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री कौशिक सरखेल को सुना गया।

2. अपीलार्थी ने इस अपील का ज्ञापन दाखिल करने में 30 दिनों के बिलम्ब की माफी के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन आई0ए0 संख्या 539 / 2020 दाखिल किया है।

3. इसमें अंतर्गस्त विधिक मुद्दों की विवेचना करने के लिए, कुछ प्रासंगिक तथ्यों और तारीखों को यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

अपीलार्थी ने क्रूरता के आधार पर प्रत्यर्थी के साथ विवाह के विघटन के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के तहत विद्वान कुटुम्ब न्यायालय, राँची के समक्ष वैवाहिक स्वत्व वाद संख्या 300 / 2011 संस्थित किया। दिनांक 14.03.2012 के एक आदेश द्वारा विद्वान कुटुम्ब न्यायालय ने प्रत्यर्थी को अंतरिम भरणपोषण और मुकदमेबाजी का खर्च अनुज्ञात किया। चूँकि अपीलार्थी दिनांक 14.03.2012 के आदेश को पालन करने में विफल रहा, इसलिए वाद को दिनांक 05.08.2015 को इस आधार पर खारिज कर दिया

गया कि याचिकाकर्त्ता ने 7,000/- रू0 प्रति माह अंतःकालीन भरणपोषण और मुकदमेबाजी के खर्च के रूप में 10,000/- रू0 का एकमुश्त राशि का भुगतान प्रत्यर्थी को नहीं किया था। इस तरह, वह अपनी स्वयं की गलती पर अनुतोष पाने का हकदार नहीं है। प्रत्यर्थी कठिनाई का सामना करने के कारण मामले को लड़ नहीं सकी। तद्नुसार, मामले को समाप्त कर दिया गया था।

4. व्यथित होकर अपीलार्थी ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत रिट याचिका डब्ल्यू0पी0एस0 सं0 4989/2015 दाखिल किया जो दिनांक 12.10.2015 को संस्थित किया गया। दिनांक 03.12.2018 के आदेश से याचिकाकर्त्ता को कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 के तहत रिट याचिका को अपील में संपरिवर्तित करने की अनुमति दी गई थी। तत्पश्चात्, वर्तमान अपील दिनांक 04.02.2019 को संस्थित की गई थी। कार्यालय ने वर्तमान अपील के ज्ञापन को दाखिल करने में 30 दिनों का बिलम्ब इंगित किया, जिसके माफी के लिए वर्तमान आई0ए0 दाखिल किया गया है।

5. बिलम्ब के माफी के बिन्दु पर दो महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न हुए, जो पिछले आदेश दिनांक 09.12.2020 में इंगित किए गए हैं और निम्नवत् हैः

> (i) परिसीमा की अवधि की गणना का तरीका क्या है जब भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका या किसी अन्य याचिका/आवेदन/अपील को इस न्यायालय के एक आदेश द्वारा कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 के तहत अपील में संपरिवर्तित करने की अनुमति प्रदान किया जाता है?
>
> (ii) हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के प्रावधानों के अधीन संस्थित वाद में कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश के विरूद्ध कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के तहत अपील दाखिल करने के लिए परिसीमा की अवधि क्या है अर्थात् 1984 के अधिनियम की धारा 19 (3) के अन्तर्गत 30 दिन या विवाह कानून (संशोधित अधिनियम), 2003 के द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की संशोधित धारा 28 के अन्तर्गत 90 दिन?

6. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने दोनों मुद्दों पर न्यायालय के समक्ष विचार रखा। इसके पश्चात्, हम इसमें अंतर्ग्रस्त विधिक मुद्दों के समाधान के लिए आगे बढ़ते हैं। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **नवाब शकाफत अली खान और अन्य बनाम् नवाब**

**इमदाद जाह बहादुर और अन्य, (2009) 5 एस0सी0सी0 162** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है इस सिद्धांत पर कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और/या 227 के तहत एक याचिका या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के तहत एक पुनरीक्षण को अपील में संपरिवर्तित करने की अनुमति दी जा सकती है जो उच्च न्यायालय के समक्ष है। यद्यपि, न्यायालय को यह भी संतुष्ट होना चाहिए कि प्रारंभिक याचिका/आवेदन को दुर्भावनापूर्वक दायर नहीं किया गया था। बेहतर विवेचना के लिए रिपोर्ट के कण्डिका–48 को नीचे उद्धृत किया गया हैः

> ''48. यदि उच्च न्यायालय के पास भारत के संविधान 226 और 227 के तहत एक अपील या पुनरीक्षण आवेदन या रिट याचिका ग्रहण करने का अधिकारिता था, तो दिए गए मामले में, अन्य शर्तों की पूर्ति के अधीन, यह अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए पुनरीक्षण आवेदन या रिट याचिका को अपील में या प्रतिलोमतः, संपरिवर्तित कर सकता है। हालांकि, निर्विवाद रूप से, उक्त उद्देश्य के लिए, इस तरह के अधिकारिता के प्रयोग के लिए एक उपयुक्त मामला होना चाहिए।''

**[2011 (1) एमएच0 एल0जे0] 269** में प्रकाशित **विनोद कुमार बनाम् कैलाश कुमार** के मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय के निर्णय पर आगे विश्वास किया गया है जिसमें समरूप प्रश्न अंतर्भूत था। आक्षेपित आदेश के विरूद्ध रिट याचिका दायर करने की तारीख तक 46 दिनों का या रिट याचिका को अपील में संपरिवर्तित करने की तारीख तक 384 दिनों का बिलम्ब था। बॉम्बे उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने इस मुद्दे पर विचार किया और निम्नवत् अभिनिर्धारित किया हैः–

> 18. यद्यपि, जब न्यायालय याचिकाकर्त्ता को, रिट याचिका को अपील में संपरिवर्तित करने की अनुमति देती है, तो केवल यह संतुष्ट होने पर कि रिट याचिका नेक नियत से संचालित था और आवेदक ऐसी अवधि के अपवर्जन का लाभ पाने का हकदार है। एक बार जब न्यायालय द्वारा संपरिवर्तन की अनुमति प्रदान की जाती है तो यह रिट याचिका दायर करने की तारीख से होता है। इस तरह का संपरिवर्तन अनुज्ञेय है जब कार्यवाही उसी न्यायालय में किन्तु अलग अधिकारिता में चला है। यह आवश्यक नहीं है कि बिलम्ब के माफी के लिए अलग से आवेदन दायर किया जाए या रिट याचिका दाखिल करने की तिथि से लेकर उसके संपरिवर्तन की तिथि तक का बिलम्ब का स्पष्टीकरण दिया जाए। कारण स्पष्ट है कि रिट याचिका की कार्यवाही न्यायालय के समक्ष

है। ऐसी स्थिति में, बिलम्ब की माफी की अवधि को रिट याचिका दायर करने की तारीख तक गिना जाना चाहिए, न कि रिट याचिका को अपील में संपरिवर्तन करने के आदेश की तारीख तक गिना जाना चाहिए। वर्तमान मामले में, इस न्यायालय ने आदेश के खिलाफ रिट याचिका को अपील में संपरिवर्तन करने की अनुमति दिनांक 10.07.2019 को प्रदान की है, और इसलिए दिनांक 22.09.2008 को रिट याचिका दायर करने के चरण तक के बिलम्ब का स्पष्टीकरण दिये जाने का आवश्यकता था। इस दृष्टि से, श्री सदवर्ते का यह तर्क कि संपरिवर्तन का आदेश अर्थात् 10.07.2009 तक के बिलम्ब का स्पष्टीकरण दिये जाने की आवश्यकता थी, को खारिज किया जाता है।''

7. इस मुद्दे से प्रासंगिक एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या परिसीमा अधिनियम की धारा 14 में संनिहित सिद्धांत बिलम्ब के माफी के लिए ऐसी स्थिति में लागू होते हैं, यद्यपि यह प्रावधान अपील में लागू नहीं है। इस संबंध में, **समेकित अभियांत्रिण उद्यम बनाम् प्रधान सचिव, सिंचाई विभाग और अन्य [(2008) 7 एस0सी0सी0 169]** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के मत का उल्लेख करना उचित है जो शर्तें अधिकथित किया है, जिसे पूरा होने पर परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 का लाभ दिया जा सकता है। रिपोर्ट के कण्डिका–21 को निम्नलिखित रूप से उद्धृत किया गया है:–

''21. परिसीमा अधिनियम की धारा 14 बिना अधिकारिता के न्यायालय में वास्तविक कार्यवाही के समय के अपवर्जन से संबंधित है। उक्त धारा के विश्लेषण पर यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 14 को उपयोग में लाने से पहले निम्नलिखित शर्तें पूरी होनी चाहिए:

(1) पूर्व और पश्चात्वर्ती दोनों कार्यवाहियाँ एक ही पक्ष द्वारा संचालित की गई दीवानी कार्यवाहियाँ हैं;

(2) पूर्व की कार्यवाही तत्परता और नेक नियत से चलाया गया था;

(3) पूर्व की कार्यवाही की विफलता, अधिकारिता की त्रुटि या समान प्रकृति के अन्य हेतुक के कारण हुई थी;

(4) पहले की कार्यवाही और बाद की कार्यवाही एक ही मुद्दे के मामले से संबंधित होना चाहिए और;

(5) दोनों कार्यवाहियाँ एक ही न्यायालय में हैं।''

**कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से मोहिंदर सिंह (मृत) बनाम् परमजीत सिंह और अन्य, [(2018) 5 एस0सी0सी0 698]** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 के उद्देश्य को दोहराया और संप्रेक्षित किया कि प्रावधान का उद्देश्य उन मामलों में परिसीमा के वर्जन के विरूद्ध राहत प्रदान करना है जहाँ उपचार के लिए गलती से, गलत फोरम का सहारा या चयन किया गया है। यह भी दोहराया गया है कि अधिनियम की धारा 14 व्यापक दायरे की है और इसका उदारपूर्ण अर्थान्वयन करनी चाहिए। आगे यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि अधिनियम की धारा 14 का विस्तार केवल अधिकारिता के मुद्दे तक ही सीमित नहीं है बल्कि समान प्रकृति के अन्य मुद्दे भी हैं। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **एम0पी0 स्टील कॉर्पोरेशन बनाम् आयुक्त केन्द्रीय उत्पाद [(2015) 7 एस0सी0सी0 58]** और **जे0 कुमारादासन नायर और एक अन्य बनाम् इरीक सोहन और अन्य [(2009) 12 एस0सी0सी0 175]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया है यह सुझाव प्रस्तुत करने के लिए कि धारा 14 के संदर्भ में अपवर्जन का लाभ सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 128 के तहत अर्ध–न्यायिक अपील और उच्च न्यायालय के समक्ष दायर पुनरीक्षण आवेदन पर लागू होगा। **इंडिया इलेक्ट्रिक वर्क्स लिमिटेड बनाम् जेम्स मंतोष [ए0आई0आर0 1971 एस0सी0 2313]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया है जिसमें यह सम्प्रेक्षित किया गया कि पद ''या समान प्रकृति के अन्य हेतुक'' का उदारपूर्ण अर्थान्वयन करना था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि प्रारंभिक याचिका दायर करने की तारीख से लेकर उसके संपरिवर्तन की तारीख तक की अवधि के अपवर्जन का समर्थन विधिक सूक्ति *एक्टस क्यूरीए नीनेम ग्रेवबिट* द्वारा भी किया गया है जिसका अर्थ है कि न्यायालय के कार्य से किसी की हानि नहीं होती। यह भी आगे निवेदन किया गया है कि न्यायालय के समक्ष एक आवेदन या अपील का लंबित रहना और इस तरह की याचिका या आवेदन के निपटान में लगने वाला समय पूरी तरह से विवादी के हाथों में नहीं है। इस संबंध में, उन्होनें **सारा मैथ्यू बनाम् इंस्टीच्यूट ऑफ कार्डियो वैस्कुलर डिजीज** जो **अपने निदेशक डॉ0 के0एम0 चेरियन एवं अन्य [(2014) 2 एस0सी0सी0 62]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के

संवैधानिक न्यायपीठ के निर्णय पर आगे भरोसा किया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि दं0प्र0सं0 की धारा 468 के तहत परिसीमा की अवधि की गणना करने के उद्देश्य से प्रासंगिक तारीख शिकायत दर्ज करने की तारीख या अभियोजन चलाने की तारीख है, न कि वह तारीख जिस दिन दण्डाधिकारी संज्ञान लेते हैं। इन निवेदनों के आधार पर, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना किया है कि परिसीमा की अवधि मूल याचिका दायर करने की तारीख तक ही माना जाना चाहिए और इसके बाद व्यतित समय अर्थात् अवधि, जिसके दौरान मूल याचिका इस न्यायालय के समक्ष अपने संपरिवर्तन तक लम्बित थी, को परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 के सदृश्य सिद्धांत पर परिसीमा की अवधि की गणना करने के उद्देश्य के लिए अपवर्जित करना चाहिए।

8. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किये गये विचार का समर्थन किया है, जो इन निर्णयों और उनके अधीन अभिनिर्धारित विधिक सिद्धांतों पर आधारित हैं।

9. इस संबंध में अभिनिर्धारित प्रमुख सिद्धांतों पर विचार करने के उपरान्त, हम इस सुझाव से सहमत हैं कि ऐसी प्रकृति के मामले में, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के अधीन संस्थित की गई है, यदि न्यायालय द्वारा कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 के अधीन याचिका को अपील में संपरिवर्तित करने की अनुमति दी है तो परिसीमा की अवधि की गणना मूल याचिका दायर करने की तारीख तक केवल की जानी चाहिए और इसके बाद व्यतित समय अर्थात् इस न्यायालय के समक्ष याचिका की लंबित होने के दौरान, इसके संपरिवर्तन तक, को निम्नवत् कारणों से अपवर्जित करना चाहिएः

(i) जब न्यायालय याचिकाकर्त्ता को रिट याचिका को अपील में संपरिवर्तित करने की अनुमति देती है तो केवल यह संतुष्ट होने पर कि रिट याचिका नेक नियत से संचालित किया गया है;

( ii) इस तरह का संपरिवर्तन अनुज्ञेय है जब कार्यवाही उसी न्यायालय में किन्तु अलग अधिकारिता में चला है;

(iii) परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के तहत परिकल्पित सिद्धांतों को अपनाते हुए, यद्यपि यह अपील पर लागू नहीं होता है, यदि परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 14 के तहत निर्धारित शर्तें पूरा होती हुई प्रतीत होती हैं, इस अर्थ में कि कार्यवाही वास्तविक रूप से और तत्परता से चलाया गया है और पूर्व की कार्यवाही की विफलता, अधिकारिता की त्रुटि या समान प्रकृति के अन्य हेतुक के कारण हुई थी, प्रारम्भिक याचिका दायर करने के बाद से लेकर इसके संपरिवर्तन तक के समय को अपवर्जित करने का लाभ, ऐसे मामलों में परिसीमा की अवधि की गणना के उद्देश्य के लिए भी दिया जाना चाहिए।

10. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता सही हैं कि ऐसा दृष्टिकोण भी कानूनी मुहावरे *एक्टस क्यूरीए नेमिनेम ग्राभविट* जिसका अर्थ है कि न्यायालय का कार्य किसी व्यक्ति को हानि नहीं करेगा, से उत्पन्न होता है। यह सच है कि इस मामले को उठाने और संपरिवर्तन का आदेश पारित करने में लगने वाला समय पूरी तरह से विवादी पक्ष के हाथों में नहीं है। इन सभी कारकों को ध्यान में रखते हुए, और उपर वर्णित विधि के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, जैसा माननीय सर्वोच्च और उच्च न्यायालय के निर्णयों में अभिकथित है, हम प्रारम्भ में रखे गये विधिक प्रश्न का उत्तर सकारात्मक में दे रहे हैं। ऐसे मामलों में जहाँ भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन याचिका या किसी अन्य याचिका/आवेदन को इस न्यायालय के आदेश द्वारा कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के अन्तर्गत अपील में संपरिवर्तित करने की अनुमति दी गई है, परिसीमा की अवधि की गणना प्रारम्भ में दायर याचिका की तिथि तक होनी चाहिए, याचिका दायर करने की तिथि के पश्चात् बिताए गए समय को छोड़कर, कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 19 के अन्तर्गत इसे अपील में संपरिवर्तन तक।

11. हम अब दूसरे प्रश्न का उत्तर देने के लिए आगे बढ़ते हैं कि हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के प्रावधानों के अन्तर्गत संस्थित वाद में कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश के विरूद्ध कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के अन्तर्गत दायर अपील के लिए परिसीमा की अवधि क्या होनी चाहिए अर्थात् 1984 की अधिनियम की धारा

19 (3) के अन्तर्गत 30 दिन या हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की संशोधित धारा 28, विवाह कानून (संशोधित अधिनियम) 2003 के अनुसार 90 दिन?

12. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इन मामलों में अपने कथन के समर्थन में कहा है कि हिन्दू विवाह अधिनियम की संशोधित धारा 28 के अनुसार परिसीमा की अवधि 90 दिन होनी चाहिए और निम्नलिखित निवेदन किया है :–

यह निवेदन किया गया है कि पारिवारिक विवादों के शीघ्र निपटान के लिए कुटुम्ब न्यायालय की स्थापना हेतु लोकहित में कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 को अधिनियमित किया गया था और यह 14.09.1984 को प्रवृत हुआ। व्याख्या के खण्ड (क) से (छ) तक में वर्णित मामलों के सम्बन्ध में वाद या कार्यवाही पर अब तक जिला न्यायालय या अधीनस्थ न्यायालय द्वारा उपयोग किये जा रहे सम्पूर्ण अधिकारिता को कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 7 (1) (क) प्रदान करता है। दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय ix (पत्नी, बच्चों एवं माता–पिता के पोषण के आदेश के सम्बन्ध में ) के अन्तर्गत न्यायिक दण्डाधिकारी, प्रथम श्रेणी द्वारा उपयोग किये जा रहे अधिकारिता को धारा 7 (2) (क) कुटुम्ब न्यायालय को प्रदान करता है। यह केवल दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय ix में वर्णित मामलों के सम्बन्ध में सीमित अधिकारिता को कुटुम्ब न्यायालय को प्रदान करता है। यद्यपि, अधिनियम की धारा 7 (2) (ख), अन्य अधिनियमों द्वारा कुटुम्ब न्यायालय पर अतिरिक्त क्षेत्राधिकार प्रदान करने से सम्बन्धित है। यह प्रावधान समर्थकारी प्रावधान है जिसके द्वारा विधायिका अतिरिक्त क्षेत्राधिकार प्रदान करते हुए न्यायालय के क्षेत्राधिकार को बढ़ा सकती है।

**[देखेंः राणा नाहिद उर्फ रेशमा उर्फ सना और अन्य बनाम् साहिदुल हक चिश्ती, (2020 एस0सी0सी0 ऑनलाइन एस0सी0 522)]**

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम के अध्याय v के अन्तर्गत धारा 19 में अपील और पुनरीक्षण का उपबंध है। कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 (3) के अन्तर्गत, कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित निर्णय या आदेश, जो वादकालिन आदेश न हो, के विरूद्ध अपील, निर्णय या आदेश की तिथि से 30 दिनों के अन्दर दायर होनी चाहिए। धारा 20, कुटुम्ब

न्यायालय अधिनियम को प्रत्यादिष्ट प्रभाव प्रदान करता है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री इंद्रजीत सिन्हा ने हिन्दू विवाह अधिनियम के प्रावधानों का उल्लेख किया है, उनके अनुसार यह हिन्दुओं के बीच विवाह से संबंधित विधि को संहिताबद्ध करने के लिए संशोधन है। यह एक विशेष अधिनियम है जिसमें विवाह से संबंधित प्रावधान, दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन और न्यायिक पृथक्करण, विवाह एवं तलाक को शून्य करने का प्रावधान है। अध्याय V जिसमें (धारा 19 से 28) है, दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन, न्यायिक पृथक्करण या तलाक और अपील हेतु याचिका में न्यायालय की प्रक्रिया और क्षेत्राधिकार से संबंधित है। **[देखें: जगराज सिंह बनाम् बीरपाल कौर, (ए0आई0आर0 2007 एस0सी0 2083,** कंडिका–12)] 1955 के अधिनियम की धारा 28, डिक्री और आदेश के विरूद्ध अपील से संबंधित है। विवाह कानून (संशोधन) अधिनियम 2003 के पूर्व, धारा 28(4) में 30 दिनों के अन्दर अपील करने का प्रावधान था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकृति के अपील में समय की अपर्याप्तता को ध्यान में रखते हुए **सावित्री पाण्डेय बनाम् प्रेम चंद्र पाण्डेय [(2002) 2 एस0सी0सी0 73],** के कंडिका 19 में निम्नलिखित टिप्पणी किया है:–

> ''19. इस स्तर पर हम देखना चाहेंगे कि धारा 28(4) के अन्तर्गत अपील दायर करने के लिए परिसीमा की अवधि स्पष्ट रूप से अपर्याप्त है जो विवेकहीन पति–पत्नी विवादी द्वारा विवाह की विफलता की सुविधा प्रदान करता है। हमलोगों के जैसे विशाल देश में, इस अधिनियम के अन्तर्गत शक्तियाँ, सामान्यतः जिला न्यायालय द्वारा प्रयोग करने योग्य है और प्रथम अपील उच्च न्यायालय में दायर की जानी है। दूरी, भौगोलिक स्थितियों, पक्षों की वित्तीय स्थिति और नियमित अपील दायर करने के लिए आवश्यक समय को अगर ध्यान में रखा जाए, तो यह निश्चित रूप से दर्शाएगा कि अपील दायर करने के 30 दिनों की निर्धारित अवधि अपर्याप्त और न्यून है। अपील के अभाव में, दूसरा पक्ष विवाह कर सकता है और अन्य पक्ष के अपील करने के अधिकार को कुंठित करने का प्रयास कर सकता है जैसा वर्तमान मामले में प्रतीत होता है। हमलोग का मत है कि निर्णय या डिक्री के विरूद्ध इस अधिनियम के अन्तर्गत अपील करने हेतु न्यूनतम 90 दिन की अवधि निर्धारित की जा सकती है और उपरोक्त अवधि के दौरान सम्पन्न किसी भी विवाह को शून्य माना जाएगा। इस संबंध में उचित कानून बनाया जाना आवश्यक है। हम रजिस्ट्री को निर्देश देते

हैं कि इस निर्णय की प्रति कानून और न्याय मंत्रालय को इस तरह की कार्यवाही, जैसा उपयुक्त हो सकता है, के लिए भेजें।

13. तत्पश्चात्, संसद ने विशेष विवाह अधिनियम, 1954 और हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के निश्चित प्रावधानों में संशोधन हेतु विवाह कानून (संशोधन) अधिनियम, 2003 को अधिनियमित किया। उसमें अभिलिखित उद्देश्यों और कारणों का कथन यह इंगित करता है कि वैवाहिक वादों के पक्षकारों को 30 दिनों के बदले 90 दिनों का समय प्रदान करने हेतु विशेष विवाह अधिनियम की धारा 39 एवं हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 28 में संशोधन का प्रस्ताव करता है। यह संशोधन माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एक निर्णय में की गई टिप्पणियों पर आधारित था यथा **सावित्री पाण्डेय (उपर)** का मामला। यह संशोधन किया गया ताकि विधि में दिए गए अपर्याप्त अवधि का लाभ पाते हुए, विवेकहीन विवादी पति–पत्नी विवाह को कुंठित न कर सकें। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि संसद कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 19(3) के अन्तर्गत 30 दिनों की अभिनिर्धारित अवधि के प्रति सचेत है, यद्यपि सचेत रूप से हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 28 के अन्तर्गत परिसीमा की अवधि 90 दिनों के लिए बढ़ाने हेतु चुना और इसी प्रकार, संशोधन विशेष विवाह अधिनियम, 1954 में भी किया गया जो एक धर्मनिरपेक्ष विधि है जो सभी धर्मो पर लागू होती है।

14. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तलाक अधिनियम की धारा 55 के प्रावधानों का भी उल्लेख किया है। उन्होनें निवेदन किया है कि अपील दायर करने के लिए परिसीमा की कोई अवधि नहीं दी गई है, किन्तु परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 116 के अन्तर्गत, मूल दीवानी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, न्यायालय के डिक्री और आदेश के विरूद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने हेतु 90 दिनों का समय दिया गया है जो तलाक अधिनियम, 1869 के अन्तर्गत अपील दायर करने के लिए लागू होती है। पारसी विवाह और तलाक अधिनियम, 1936 की धारा 47 के अन्तर्गत भी, कथित अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित कोई भी न्यायालय निर्णय के विरूद्ध उच्च न्यायालय में अपील दायर करने हेतु तीन महीने की परिसीमा की अवधि प्रदान की गई है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के समकक्ष पीठ द्वारा **विनोद कुमार मिश्रा बनाम् ममता**

**देवी, [(2008) 4 जे0एल0जे0आर0 277 (एच0सी0)]** में दिये गये निर्णय को रखा जिसमें दो प्रावधानों के बीच विसंगति और असंगति पर ध्यान दिया यथा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 28(4) और कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 19(3), किन्तु इस प्रकार के अपील को दायर करने हेतु परिसीमा की अवधि क्या होनी चाहिए, इस पर विधि अभिनिर्धारित नहीं किया। इसके बजाय, इस प्रकार की प्रकृति में अपील करने हेतु परिसीमा अभिनिर्धारित करने हेतु इसने निर्णय की एक प्रति को कानून एवं न्याय मंत्रालय को इस तरह की कार्रवाई, जैसा उचित समझे, हेतु भेजे जाने का निर्देश दिया। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि हिन्दू विवाह अधिनियम के अन्तर्गत कुटुम्ब न्यायालय के आदेश के विरूद्ध अपील के उपचार के लिए लागू विधि के प्रावधानों में असंगति के मद्देनजर यह मुद्दा अनुत्तरित छोड़ दिया गया था, यह प्रश्न *रेस–इंटेग्रा* है।

15. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **शिवराम डोडन्ना बनाम् शर्मिला शिवराम शेट्टी [2017 (1) एमएच0एल0जे0 281]** में बम्बई उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ के आदेश पर प्रचुर विश्वास किया है, जहाँ इसी प्रकार के प्रश्न को उत्तर के लिए रखा गया, जो इस प्रकार है:

> ''क्या कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 की उपधारा (1) के अधीन अपील, धारा 19 की उपधारा (3) के अधीन परिसीमा की अवधि के द्वारा शासित होगी या हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 28 की उपधारा (4) के अधीन दिये गये परिसीमा की अवधि इस प्रकार के अपील में लागू होगी ?

16. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि बम्बई उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय का अनुसरण इलाहाबाद उच्च न्यायालय के खण्ड पीठ द्वारा श्रीमती गुंजन बनाम् प्रवीण के मामले में प्रथम अपील त्रुटि संख्या 374 वर्ष 2016 में दिनांक 08.02. 2017 को पारित आदेश में किया जा चुका है और यह राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा **कुलदीप यादव बनाम् अनिता यादव [2019 एस0सी0सी0 ऑनलाईन राज 4016]** के मामले में भी अनुसरण किया गया है। वे यह भी निवेदन करते हैं कि दिल्ली उच्च न्यायालय ने इसका अनुसरण **आर0आर0डी0 बनाम् आर0एस0 [2019 एस0सी0सी0**

**ऑनलाईन डेल 7446]** और **डी0सी0 बनाम् बी0सी0 [2019 एस0सी0सी0 ऑनलाईन डेल 7032]** में किया गया है।

17. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया है कि हिन्दू विवाह अधिनियम एक विशेष अधिनियम है और इस क्षेत्र को शासित करने वाला मौलिक विधि, अपील हेतु मंच प्रदान करने का 1984 का अधिनियम प्रक्रियात्मक प्रकृति का है। इसलिए, मौलिक विधि में अपील दायर करने हेतु परिसीमा की अवधि, प्रक्रियात्मक विधि के अन्तर्गत परिसीमा से प्रबल होनी चाहिए। आगे यह भी निवेदन किया गया है कि कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 के अधिनियमित होने के पश्चात् हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 28(4) में संशोधन किया गया था, इसलिए, इसे अधिनियम की धारा 19(3) के अधीन परिसीमा की निर्धारित अवधि से प्रबल होनी चाहिए। उनके अनुसार, बम्बई उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ का मत सही है जो अधिकारिक रूप से निर्णय किया गया है और अन्य न्यायालय द्वारा अनुसरण किया गया।

18. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने, विशेष कानून सामान्य कानून पर प्रबल होगा, के प्रस्ताव के समर्थन में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **फारमेसी काउंसिल ऑफ इंडिया बनाम् डॉ0 एस0के0 तोषनीवाल एजुकेशन ट्रस्ट, [2020 एस0सी0सी0 ऑनलाईन एस0सी0 296]** में पारित आदेश पर विश्वास जताया है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय से दो संसदीय कानून यथा फारमेसी एक्ट, 1948 और अखिल भारतीय तकनीकी शैक्षणिक अधिनियम, 1987 के बीच टकराव को हल करने को कहा गया। यह अभिनिर्धारित किया गया कि फारमेसी एक्ट एक विशेष अधिनियम होने से ए0आई0सी0टी0ई0 एक्ट, 1987 के प्रावधानों पर प्रबल होगा। प्रस्ताव के समर्थन में प्रतिवेदन की कंडिका 26 से 31 तक को रखा गया।

विद्वान अधिवक्ता आगे यह निवेदन करते हैं कि **सावित्री पाण्डेय (उपर)** के मामले में जो कारण माननीय सर्वोच्च न्यायालय को मार्गदर्शन दिया वही तर्क इस विधिक पहेली को हल करने में होनी चाहिए। यदि कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 19(3) के

अन्तर्गत निर्धारित 30 दिनों की अवधि का पालन किया जाता है तो यह पीड़ित पक्षों की भौगोलिक परिस्थितियों, पक्षों की वित्तीय स्थिति और नियमित अपील दायर करने के समय की आवश्यकता के लिए अपील दायर करने के लिए पूर्णतः अपर्याप्त होगा। हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 28(4) के अन्तर्गत परिसीमा की अवधि को संशोधन अधिनियम, 2003, विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 2003 के द्वारा बढ़ाये जाने का उद्देश्य पराजित हो जायेगा। इसलिए, इस न्यायालय को इस सम्बन्ध में तिथि अभिनिर्धारित करने से बचना चाहिए। वे निवेदन करते हैं कि इस स्थिति में, न्यायालय का यह कर्त्तव्य है कि निर्वचन के सिद्धांत जिसमें से एक सामंजस्यपूर्ण निर्माण है, को लागू करके इस गतिरोध को हल करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में, **गुजरात ऊर्जा विकास निगम लि0 बनाम् एस्सार पॉवर लि0, [(2008) 4 एस0सी0सी0 755]; तलचर नगरपालिका बनाम् तलचर विनियमित बाजार समिति और अन्य [(2004) 6 एस0सी0सी0 178]; इरिडियम भारत दूरसंचार लि0 बनाम् मोटोरोला इंक, [(2005) 2 एस0सी0सी0 145]** और हाऊस ऑफ लॉर्ड्स के एक निर्णय **इस्टबॉर्न निगम बनाम् फोर्टेस लि0 [(1959) 2 ए0आई0आई ई0 आर0 102],** 107 पृष्ठ पर, आदि निर्णयों पर भरोसा किया गया है।

19. इस बिन्दू पर प्रतिपादित विधिक सिद्धान्तों का समर्थन उत्तरवादी के विद्वान अधिवक्ता के साथ–साथ अपीलकर्त्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भी किया गया।

20. इस न्यायालय के सम्मुख उपस्थित इस बिलम्ब करने वाले बिन्दु पर हमने परिसीमा की अलग–अलग अवधियाँ विहित यथा–हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 28 के अधीन 90 दिन, विवाह कानून (संशोधन) अधिनियम, 2003 द्वारा यथा संशोधित एवम् 1984 की अधिनियम की धारा 19(3) के अधीन 30 दिन होने के कारण पर्याप्त समय दिया। यह सत्य है कि यह वाद–विषय **विनोद कुमार मिश्रा (उपरोक्त)** के मामले में इस न्यायालय के एक समकक्ष बेंच के समक्ष उत्पन्न हुआ था। हालांकि, विद्वान खण्ड पीठ ने इस कानून में उचित संशोधन हेतु इस मामले को विधायिका को संदर्भित किया था। यह वाद–विषय अनुत्तरित छोड़ दिया गया। यह कानूनी विषय निर्णय हेतु अभी तक छोड़ा हुआ है। बहुत

पहले यह कहा गया है कि केस केवल एक प्राधिकरण है जो वास्तव में निर्णय लेता है और न कि तार्किक रूप से इसका अनुसरण करता है। इस सम्बन्ध में, हमलोग कोर्ट ऑफ अपील की राय, पर फायदा के साथ भरोसा कर सकते हैं, जो **क्वीन बनाम् लीथेम [1901 ए0सी0 495]** के मामले में निर्णय दिया गया है और जिसे अम्बिका क्वारी वर्क्स बनाम् गुजरात राज्य एवं अन्य **[(1987) 1 एस0सी0सी0 213]** के वाद में अनुसरण किया गया है। कण्डिका–18 को यहाँ उद्धृत किया गया हैः–

> ''18. उपरोक्त टिप्पणियों को विस्तृत रूप से उस केस के निर्णय के वास्तविक रेशियों को तथ्यों की पृष्ठभूमि में समझने के उद्देश्य से रखा गया है। यह सत्य है कि यह न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि 1980 के अधिनियम को प्रभाव में आने की अनुमति अगर प्रदान की गयी है तथा वन भूमि तोड़ा गया है या साफ किया गया है तो ऐसी स्थिति में 1980 के अधिनियम की धारा 2 का खण्ड (ii) लागू नहीं होगा। परन्तु वह निर्णय उस वाद की तथ्यों की पृष्ठभूमि में दिया गया था। किसी निर्णय का रेशियो उस वाद के तथ्यों की पृष्ठभूमि में अवश्य समझा जाना चाहिए। बहुत पहले यह कहा गया है कि केस केवल एक प्राधिकरण है जो वास्तव में निर्णय लेता है और न कि तार्किक रूप से इसका अनुसरण करता है (देखें लॉर्ड हेल्सवरी में क्वीन बनाम् लीथेम)। परन्तु अनुच्छेद 141 के अधिदेश के मद्देनजर इस न्यायालय के निर्णय का रेशियो देश का कानून है, श्री गोविन्द दास ने निवेदन किया कि किसी निर्णय का रेशियो पता लगाकर अवश्य मालूम कर लेना चाहिए यदि उसका उल्टा सही नहीं था। लेकिन यह न्यायालय, हालांकि, बिहार राज्य बनाम् वंशी राम मोदी में उक्त निर्णय के कारणों को व्यक्त करने में सतर्क था। इस न्यायालय ने उस निर्णय में पाया कि इसके विपरीत विचार करने का परिणाम होगा (एस0सी0सी0 पृष्ठ 648, कंडिका–10) कि आकर्षक–अभ्रक (विनिंग माइका) के प्रयोजनों के लिए खुदाई जारी रह सकती है, पट्टेदार को फेल्सपार या क्वार्ट्स इकट्ठा करने से वंचित किया जाएगा जो उसे आकर्षक–अभ्रक के खनन कार्यों को करने के दौरान उसे मिले। इसका एक अनुचित परिणाम होगा जो किसी भी तरह से अधिनियम के उद्देश्य का संरक्षण नहीं करेगा। एक मौजूदा पट्टा था जहाँ खनन कार्य चल रहा था तथा एक नए शर्त को शामिल करने का यह कारण था कि खनन कार्यों को करते समय, कुछ अन्य खनिजें भी उपलब्ध थी, तब वह इन लोगों को इकट्ठा करने का अधिकार दे दिया गया था। नए पट्टे उक्त अन्य खनिजों के उपयोग या संग्रहण की सिर्फ अनुमति दी।''

21. हम, इसलिए, इस प्रश्न का जबाव देने के लिए आगे बढ़ते हैं क्योंकि यह वाद–विषय अभी तक इस अदालत द्वारा निर्णीत नहीं किया गया है। इस संबंध में हमें

कठिन परिश्रम नहीं करना पड़ सकता है क्योंकि बम्बई उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19(3) और हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 28(4) की अनुप्रयोज्यता से संबंधित परिसीमा की अवधि पर पक्षकारों के अधिकारों से संबंधित हिन्दू विवाह अधिनियम जैसे विवाह का विघटन, दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन, अवृत और शून्य के रूप में विवाह की घोषणा, न्यायिक पृथक्करण आदि से संबंधित वादों से उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल करने को शासित करने वाली परिसीमा की अवधि से संबंधित मुद्दे पर प्रत्यक्ष रूप से विचार किया। इस वाद–विषय पर बम्बई उच्च न्यायालय की स्पष्ट करने वाली राय जो कण्डिका 14 से 28 में समाहित है, उसे नीचे उद्धृत किया गया हैः–

> *"14. उपर उद्धृत, शीर्ष न्यायालय द्वारा दी गई टिप्पणियों और सुझावों के परिणामस्वरूप, संसद ने 1955 के अधिनियम की धारा 28(4) के प्रावधानों में संशोधन किया। इसलिए, वर्ष 2003 में उक्त अधिनियम में संशोधन करने के प्रयोजन और उद्देश्य पर विचार करने की जरूरत है। प्रावधानों को संशोधन करते समय, संसद को 1984 के अधिनियम के अस्तित्व की जानकारी थी। यह माना जाता है कि संसद इस विषय से संबंधित एक अन्य कानून के अस्तित्व के बारे में अवगत थी जिसमें फोरम, प्रक्रिया और परिसीमा की अवधि विहित की गयी थी। इसलिए सामंजस्यपूर्ण व्याख्या जो कानून के प्रयोजन एवं उद्देश्य को आगे बढ़ाएगी, को अपनाया जाना होगा।*
>
> *15. चूँकि 1955 का अधिनियम संसद द्वारा वर्ष 2003 में संशोधित किया गया था, उस अर्थ में, वह एक बाद के कानून में विहित 90 दिन की परिसीमा की अवधि को पूर्व के अधिनियम यथा 1984 के अधिनियम में विहित परिसीमा की अवधि से संबंधित प्रावधानों को प्रत्यादिष्ट कर देगा। कानून का मूल प्रावधान बाद के चरण में संशोधित किया गया और वह अभिभावी होगा बाद के समय के होने के कारण।*
>
> *16. यद्यपि, यदि दोनों अधिनियमों को कतिपय विषयों एवं स्थितियों पर विशेष एवम् सामान्य मान लिया जाय, तो भी, सही व्याख्या के रूप में तथा परिसीमा की महत्तर अवधि का उपबंध करने के प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए, यह अर्थ लगाया जाना चाहिए कि कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं आदेशों से उद्भूत अपीलों को 1955 की अधिनियम की धारा 28(4) के अधीन विहित परिसीमा की महत्तर अवधि द्वारा शासित किया जाएगा। कोई प्रतिकूल निर्वचन ऐसे अधिनियम के प्रयोजन को विफल कर देगा जैसा कि सावित्री पाण्डेय के मामले में शीर्ष न्यायालय के सुझाव पर किया गया था।*

*21. 1955 के अधिनियम और 1984 के अधिनियम के अधिनियमनों की पद्धति, और स्पष्ट रूप से परिसीमा के प्रावधानों तथा 1984 के अधिनियम में उपबंधित तथापि प्रावधानों पर विचार करने के बाद, हम दो अधिनियमनों के बीच कोई स्पष्ट असंगति नहीं मिलती है। यह विधि का सिद्धांत है कि तथापि (नॉन ऑब्सटेंटी) प्रावधान का प्रत्यादिष्ट प्रभाव के लिए दोनों अधिनियमनों के बीच स्पष्ट असंगति होनी चाहिए।*

*22. निर्वचन के विधि का सिद्धांत आगे यह अधिकथित करता है कि किसी दिए गए मामले में दोनों अधिनियमन विशेष विधियां हो सकती हैं जो विभिन्न परिस्थितियों से निपटती है तथा दोनों विशेष विधियों में 'तथापि' प्रावधान हो सकता है। ऐसी स्थिति में, अधिनियम के प्रयोजन एवं उद्‌देश्यों पर विचार करते हुए, दो अधिनियमनों के बीच के टकराव को खत्म करने की जरूरत है।*

*23. यह निर्वचन का स्थायी नियम है कि यदि एक आशय (कंसट्रक्शन) से, दो अधिनियमों का सामंजस्यपूर्ण रूप से आशय निकाला जा सकता है, तब दूसरे को अंगीकार किया जाना चाहिए। ऐसी व्याख्या, दोनों अधिनियमनों के उद्‌देश्यों को पूरा करेगा और कोई टकराव नहीं होगा।*

*24. उक्त दो अधिनियमनों के प्रावधानों का निर्वचन करते समय, यह विचार करने की आवश्यकता है कि हम विशाल जनसंख्या वाले देश हैं, लाखों लोगों को किसी मामले में मुकदमेबाजी के वजह से वित्तीय कठिनाई का सामना करना पड़ता है, लोगों को काफी धन, समय और ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है। फिर भौगोलिक स्थितियाँ न्याय की सुगम पहुँच को कठिन बना देती है और इन सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, और साथ हीं वैवाहिक, कुटुम्ब संबंधी मुद्‌दों पर वाद दायर करते समय पक्षकारों के सामने उत्पन्न होने वाली विचित्र परिस्थिति को देखते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने कतिपय टिप्पणियां सावित्री पाण्डेय के मामले में की थी जो सुझाव संसद द्वारा स्वीकार किया गया था और तद्‌नुसार, विधि में संशोधन किया गया।*

*25. हम विद्वान वरीय अधिवक्ता द्वारा की गई व्याख्या पर यकीन करते हैं कि यदि दो विधियों का अर्थान्वियन किया जाता है और उसे उसके उचित अर्थ में समझा जाता है, तो दोनों विधियों के बीच कोई टकराव नहीं होता है, और इसलिए, 1984 के अधिनियम की धारा 20 में 'तथापि' (नॉन ऑब्सटेंटी) प्रावधान का उपयोग करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। 1984 के अधिनियम का अधिनियमन अथवा धारा 20 के तथापि (नॉन ऑब्सटेंटी) प्रावधान का आशय 1955 के अधिनियम में किए गए प्रावधानों को विवक्षित रूप से निरसित करना नहीं है। 1984 का अधिनियम वैवाहिक विवादों से संबंधित विशेष मंच का उपबंध करता है और उस दृष्टि से, मामलों के शीघ्र न्यायनिर्णयन के लिए विशेष प्रक्रिया प्रकल्पित की गई है। और उसी संदर्भ में धारा 20 के तथापि प्रावधान में यह अर्थ लगाया जाना अपेक्षित है।*

*26. तथापि (नॉन ऑब्सटेंटी) खण्ड को उस सीमा तक अमल में लाना चाहिए जहाँ तक संसद का आशय था और उससे परे नहीं। उक्त खण्ड में उल्लिखित प्रावधान या विधि के कार्य–क्षेत्र को उपांतरित करने के लिए इसे एक विधायी उपकरण के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। तथापि (नॉन ऑब्सटेंटी) खण्ड, उसकी अस्पष्टता की स्थिति में अधिनियमित भाग के दायरे और सीमा पर प्रकाश डालेगा, परन्तु यदि अधिनियमित भाग स्पष्ट है तो इसके दायरा (स्कोप) में कटौती या विस्तार नहीं किया जा सकता है।*

*27. मेरे विचार से, 1984 के अधिनियम की योजना और अधिनियम के प्रयोजन एवं उद्देश्य पर विचार करते हुए, अधिनियम प्रक्रियात्मक प्रकृति का है। 1984 का अधिनियम वैवाहिक संबंधी विवादों के लिए विशेष मंच प्रदान करता है और विशेष नियम एवं प्रक्रिया को निर्धारित करता है। इस संदर्भ में, धारा 20 में तथापि खण्ड की रचना करना आवश्यक है।*

*28. हमारा मत यह है कि दोनों अधिनियम की योजना और 1955 के अधिनियम की धारा 28(4) के प्रावधानों में संशोधन के पीछे उद्देश्य पर विचार करते हुए, विभिन्न परिसीमा की अवधि को लागू करना उचित नहीं होगा, एक कुटुम्ब न्यायालय द्वारा आदेश के मामले में और एक अन्य नियमित दीवानी न्यायालय के मामले में। ऐसा दृष्टिकोण अधिनियम के उद्देश्य को विफल कर देगा।*

इस मत को **श्रीमती गुंजन बनाम् प्रवीण (उपर)** के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के द्वारा, **कुलदीप यादव बनाम् अनिता यादव (उपर)** में राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा **आर0आर0डी0 (उपर)** और **डी0सी0 (उपर)** में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा भी अनुसरण किया गया और इसे अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत किया गया। इस प्रकार के मत के पीछे यह तर्क था कि 1984 का अधिनियम वैवाहिक विवादों के लिए विशेष मंच प्रदान करता है और इसके लिए मामलों के शीघ्र निर्णय हेतु विशेष प्रक्रिया तैयार किया गया। धारा 20 के प्रावधान में निहित तथापि खण्ड को उस परिप्रेक्ष्य में तैयार किया जाना है, जहाँ कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 19(3) के अन्तर्गत 30 दिन की निर्धारित परिसीमा के प्रति सचेत रहते हुए ससंद ने विशेष विवाह अधिनियम की धारा 39(4) और हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 28(4) में उपयुक्त संशोधन करते हुए एवं **सावित्री पाण्डेय (उपर)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किये गये टिप्पणियों एवं इसके पीछे तर्क को ध्यान में रखते हुए परिसीमा की अवधि को 30 दिन से 90 दिन बढ़ाने के लिए चुना। यह सच है कि हमारे जैसे विशाल देश में जहाँ लाखों लोग मामलों के विवाद में वित्तीय कठिनाई का सामना करते हैं और कठिन भौगोलिक स्थिति में

अपील को आगे बढ़ाने में काफी समय, धन और ऊर्जा खर्च करनी होती है, 30 दिन की छोटी अवधि में अपील का न्यायालय तक पहुँचना एक सपना हो जाएगा और हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 28(4) में संशोधन हेतु 2003 में लाया गया अधिनियम, कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 के अन्तर्गत धारा 19(3) के प्रावधान की तुलना में समय के बिन्दु पर बाद का संशोधन है, अतः सामंजस्यपूर्ण निर्माण के सिद्धांतों को अपना कर इस असंगति को हल करने के लिये अपील हेतु और अधिक समय उपलब्ध कराने के विधायिका के उद्देश्य को और आगे बढ़ाया जाना चाहिए। हम, इसलिए, बम्बई उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ द्वारा स्थापित सिद्धांत का इस संबंध में अनुसरण करने हेतु इच्छुक हैं। हिन्दू विवाह अधिनियम एक विशेष अधिनियम है, हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत कुटुम्ब न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध अपील करने हेतु परिसीमा की अवधि को शासित करने वाले प्रावधान धारा 28(4) के अन्तर्गत निर्धारित 90 दिन की बड़ी परिसीमा के द्वारा शासित होनी चाहिए। प्रारम्भ में रखे निर्धारण हेतु द्वितीय प्रश्न का उत्तर भी उपरोक्त तरीके से सकारात्मक में दिया गया। इस प्रकार से अभिनिर्धारित होने पर, वर्तमान अपील किसी प्रकार के बिलम्ब से ग्रसित नहीं है चूंकि मूल याचिका आक्षेपित आदेश दिनांक 05.08.2015 से 90 दिन के अन्दर दायर किया गया है। इस प्रकार, वर्तमान अपील दायर करने में कोई बिलम्ब नहीं है। आई0ए0 संख्या 539/2020 निष्पादित किया गया।

22. रजिस्ट्री को यह निर्देश दिया जाता है कि वह इस प्रकार के अपील में परिसीमा की अवधि की गणना इस न्यायालय द्वारा स्थापित विधि के अनुसार करे। निर्णय को स्थानीय भाषा जैसे हिन्दी और यदि सम्भव हो, राज्य में बोली जाने वाली अन्य क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद करें। यह कार्य रजिस्ट्री द्वारा किया जाएगा। आदेश की प्रति को वेबसाइट के द्वारा प्रसार एवं राज्य में समाज के बड़े वर्ग के लाभ हेतु झारखण्ड राज्य विधिक सेवा प्राधिकार, उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति, न्यायिक अकादमी, झारखण्ड एवं जिला विधिक सेवा प्राधिकार को भेजें। आदेश की प्रति राज्य के कुटुम्ब न्यायालयों को भेजें। अपील को एडमीशन शीर्ष के अन्तर्गत सूचिबद्ध करें।

23. समाप्त करने से पूर्व, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री इंद्रजीत सिन्हा द्वारा इस न्यायालय को दी गई मूल्यवान सहायता हेतु उनकी प्रशंसा को अवश्य अभिलेखित करना चाहिए।

ह0

(अपरेश कुमार सिंह, न्याया0)

ह0

(अनुभा रावत चौधरी, न्याया0)